संविधान और तिरंगे के बारे में 1949 में क्या सोचता था संघ

विजय शंकर सिंह

हम आज़ादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं। सरकार ने इस अवसर पर सेल्फी विद तिरंगा का एक अभियान शुरू किया है। तिरंगा, देश का प्रतीक है और हमारी आन बान और शान भी है। तिरंगे के लिए लोगों ने लाठी गोलियां खाई, अपना बलिदान किया, और देश की आजादी के लिए, कुछ ने तो अपना सर्वस्व तक बलिदान कर दिया। पर आज सरकार जिस सत्तारूढ़ दल की है उसकी विचारधारा और सोच के राष्ट्रीय ध्वज तिरंगे के प्रति क्या सोच और धारणा थी, यह आज की पीढ़ी को जानना चाहिए।

व्हाट्सएप द्वारा फैलाए जा रहे दुष्प्रचार और गोएबलिज्म के इस कालखंड में लोगो को यह जानना चाहिए कि, आज जिस तिरंगे के साथ सेल्फी की प्रतियोगिता आयोजित करके खुद को देशभक्त साबित करने की कोशिश की जा रही, उनके वैचारिक पुरखों की स्वाधीनता संग्राम में क्या भूमिका रही है। बात मैं बीजेपी का वैचारिक आगार, थिंक टैंक, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ आरएसएस की कर रहा हूं। यह सवाल और जिज्ञासा भी आरएसएस के ही मित्रो से है कि, सन 1925 से 1947 तक जब लोग तिरंगे के लिए कुछ भी कर गुजरने को तैयार थे, अपनी जान की बाजी लगा रहे थे, तब आज राष्ट्रवाद और देशभक्ति का मंत्र हर बयान के साथ संपुटित रूप से जोड़ कर अपनी बात कहने वाले किस फिक्र में मुब्तिला थे ?

आरएसएस देश की मुख्य धारा से अपने जन्म के समय से ही अलग रहा है। 1925 में अपनी स्थापना के बाद से ही, संघ का चाल चरित्र चेहरा, भारत के अंदर विद्यमान लोकप्रिय और प्रमुख धारा से अलग ही, अपनी बात कहता रहा है। संघ अपनी विचारधारा को राष्ट्रवादी विचारधारा कह कर प्रचारित करता है और उसी का राजनीतिक संस्करण भारतीय जनता पार्टी भी खुद को राष्ट्रवादी ही कहती है। पर इस जिज्ञासा का समाधान कोई भी संघी मित्र नहीं करता है, कि जब आ?दी का एक राष्ट्रीय आंदोलन चल रहा था तो संघ का राष्ट्रीवाद कहाँ था? संघ जिस राष्ट्रवाद की बात करता है उनके उस राष्ट्रवाद की परिभाषा क्या है ?

हमारा स्वाधीनता संग्राम जिस राष्ट्रवाद पर आधारित था, वह तिलक, गोखले, गांधी, टैगोर, अरविंदो, नेहरू, पटेल, आजाद आदि की सोच और भारतीय अस्मिता (जो बहुलता में एकता की बात सदा से करती आयी है) से विकसित हुआ राष्ट्रवाद था। जबकि संघ जिस राष्ट्रवाद की बात करता है, वह यूरोपीय एकल समाज के राष्ट्रवाद से प्रभावित है। जिसे हम जर्मन राष्ट्रवाद कह सकते हैं। यह राष्ट्रवाद एक संकीर्ण विचारधारा का राष्ट्रवाद है, जो किसी जाति, या धर्म के श्रेष्ठतावाद पर आधारित है। और हमारी दीर्घ परंपरा में बसे हुये वसुधैव कुटुम्बकम के सिद्धांत से अलग और विपरीत है।

वर्ष 1925 में अपनी स्थापना से लेकर, वर्ष 1947, भारत के आजाद होने तक, संघ के संस्थापक डॉ केशव बलिराम हेडगेवार, और एमएस गोलवलकर संघी विचारधारा के मुख्य प्रणेता रहे हैं। डॉ हेडगेवार तो संघ के संस्थापक ही थे और गोलवलकर जिन्हें गुरु जी के नाम से संघ जगत में जाना जाता है, वह संघ की विचारधारा के प्रमुख प्रस्तोता रहे हैं। एमएस गोलवलकर ने संघ की विचारधारा पर अपनी पुस्तक द बंच ऑफ थॉट जिसका हिंदी अनुवाद विचार नवनीत है, में भारतीय संविधान के बारे में अपने जिन विचारों को व्यक्त किया है, इससे संघ का भारत के संविधान के संबंध में क्या दृष्टिकोण रहा है, स्पष्ट होता है। इस किताब को पढ़ना और देखना रोचक होगा। मैं इस लेख में संविधान के बारे में गोलवलकर के कुछ महत्वपूर्ण उद्धरण जो उनके भाषणों और उनकी पुस्तक बंच ऑफ थॉट से लिये गये हैं प्रस्तुत करूँगा, जिससे भारतीय संविधान के बारे में उनके विचारों का पता चलता है।

अगर भारत के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास की बात करें तो, संघ या हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग भारत के स्वाधीनता संग्राम की मूल धारणा, अंग्रेजों भारत छोड़ो के विपरीत थे। न सिर्फ इस महान आंदोलन के, बल्कि भारत की आजादी के लिये चलाये जा रहे किसी भी आंदोलन या

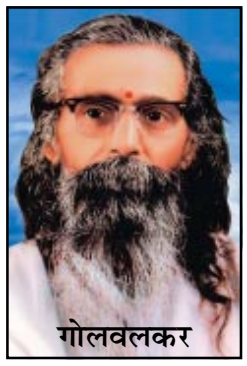
गोलवलकर

''हमारी महान संस्कृति का परिपूर्ण परिचय देने वाला प्रतीक स्वरूप हमारा भगवा ध्वज है जो हमारे लिए परमेश्वर स्वरूप है। इसलिए इसी परम वंदनीय ध्वज को हमने अपने गुरुस्थान में रखना उचित समझा है। यह हमारा दृढ़ विश्वास है कि अंत में इसी ध्वज के समक्ष सारा राष्ट्र नतमस्तक होगा''

क्रांतिकारी गतिविधियों में उनकी रुचि नहीं थी। भारत आजाद हो, यह उनका उद्देश्य कभी रहा ही नहीं है। मुस्लिम लीग भी मुसलमानों के लिये एक आजाद और अलग संप्रभु देश जरूर चाहते थी और उसी के लालच में वे अंग्रेजों से अंत तक चिपके भी रहे। जब कांग्रेस का भारत छोड़ो आंदोलन और नेताजी सुभाष बाबू का आजाद हिंद फौज का अभियान चल रहा था, तब हिन्दू महासभा, संघ और मुस्लिम लीग अंग्रेजों की सरपरस्ती में साझी सरकार चला रहे थे।

वर्ष 1940 तक आते आते, जिस पवित्र राष्ट्रवाद के आधार पर एक आजाद भारत के लिये एक स्वाधीनता संग्राम चल रहा था। वह धर्म पर आधारित देश के लिये अलग अलग खानों में बंट गया और दुर्भाग्य से देश के साझे दुश्मन ब्रिटिश न हो कर, हिन्दू और मुस्लिम हो गए। 1937 में हिन्दू एक राष्ट्र है और 1940 में मुस्लिम एक राष्ट्र है, की अवधारणा ने जन्म ले लिया और भारत एक राष्ट्र है, की अवधारणा पीछे हो गयी। इस प्रकार, धर्म पर आधारित द्विराष्ट्रवाद का जन्म हुआ और भारत दो भागों में बंट गया। जिन्ना और मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान तो पा लिया, पर हिन्दू महासभा और सावरकर जो हिन्दू राष्ट्र के स्वयंभू प्रणेता थे, उनको उनका इच्छित नहीं मिल सका। क्योंकि शेष भारत तो उन्ही मूल्यों के साथ मजबूती से खड़ा रहा, जो मूल्य हजारों साल से भारत की अस्मिता और भारत की पहचान बने हुए हैं। वह मूल्य थे सर्वधर्म समभाव के और बहुलतावाद के। संघ की मानसिकता ही बहुलतावाद के विपरीत रही है।

1947 में मिली आजादी के प्रति आरएसएस का दृष्टिकोण अलग था। उन्होंने इसे आजादी के रूप में नहीं देखा। वे यह तो चाहते थे कि देश धर्म के आधार पर न बंटे, अखंड बना रहे, और अगर बंटे भी तो भारत एक हिन्दू राष्ट्र के रूप में आजाद हो जैसा कि पाकिस्तान एक इस्लामी मुल्क के रूप में अलग हो गया था। आज भी संघ की विचारधारा से प्रशिक्षित मित्र यह मासूम सवाल करते हैं, कि जब मुस्लिमों के लिये धर्म के आधार पर एक अलग देश, पाकिस्तान बना है। तो भारत केवल हिंदुओ के लिये ही क्यों नहीं बनाया गया। संकीर्णता के साथ अगर यह तर्क सुनियेगा तो लगेगा यह एक वाजिब सवाल है। पर जब भारतीय, इतिहास, वांग्मय, दर्शन, परंपरा और सांस्कृतिक प्रवाह में पैठियेगा तो यही तर्क एक खोखला और आधारहीन लगने लगेगा।

यह सवाल उठाने वाले मित्र यह भूल जाते हैं, कि भारत की आजादी के संघर्ष में सम्मिलित सभी दल, चाहे वह कांग्रेस हो, या समाजवादी, या कम्युनिस्ट या क्रांतिकारी आंदोलन के जाबांज युवक, ये सभी धर्म आधारित राष्ट्र के लिये नहीं बल्कि ब्रिटिश गुलामी के विरुद्ध लड़ रहे थे। भगत सिंह और उनके साथियों का तो उद्देश्य ही अलग था। वे उपनिवेशवाद के खिलाफ थे और एक समाजवादी शोषण विहीन समाज की स्थापना करना चाहते थे। इन तमाम संघर्षों के बीच, आरएसएस, हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग जब 1940 के बाद स्वाधीनता के लिये निर्णायक संघर्ष शुरू हुआ तो आजादी के आंदोलन से न केवल बाहर और खिलाफ थे, बल्कि अंग्रेजों के साथ थे और कुछ तो उनके मुखबिर भी थे। ऐसा भी नहीं कि वे केवल महात्मा गांधी और नेहरू के ही खिलाफ थे, बल्कि वे सुभाष बाबू के भी खिलाफ थे, पटेल के भी और भगत सिंह की विचारधारा के खिलाफ तो थे ही।

एनएस गोलवलकर का यह उद्धरण पढें, जो उन्होंने वर्ष 1949 में आरएसएस प्रमुख के रूप में, अपने एक भाषण में कहा था। वे कहते हैं

संविधान बनाते समय अपने 'स्वत्व' को, अपने हिंदूपन को विस्मृत कर दिया गया। उस कारण एक सूत्रता की वृत्तीर्ण रहने से देश में विच्छेद उत्पन्न करने वाला संविधान बनाया गया। हम में एकता का निर्माण करने वाली भावना कौन सी है, इसकी जानकारी नहीं होने से ही यह संविधान एक तत्व का पोषक नहीं बन सका। एक देश, एक राष्ट्र तथा एक ही राज्य की एकात्मक शासन रचना स्वीकार करनी होगी। एक ही संसद हो, एक ही मंत्रिमण्डल हो, जो देश की शासन सुविधा के अनुकूल विभागों में व्यवस्था कर सके।

(गोलवलकर, 'श्री गुरूजी समग्र दर्शन', खंड-2, पृष्ठ 144)

यहां गोलवलकर संविधान को कोसते हैं। वे संविधान के संघीय ढांचे के खिलाफ है। वे एक एकीकृत भारत चाहते हैं। पर वे यह ऐतिहासिक तथ्य भूल जाते हैं कि भारत मे एक ही सम्राट या राज्य कभी रहा ही नही है। एक ही धर्म सनातन धर्म रहते हुए भी इस धर्म की असंख्य शाखा प्रशाखा हैं और, और इस बहुजातीय, बहुभाषी, बहुसांस्कृतिक भारत मे एक ही समाज की बात करना, देश की परंपरा और दीर्घ विरासत को नकार देना है। उनको वह संविधान पसंद है जो 'मनुस्मृति' में है। उन्हें इस बात से आपत्ति है कि भारत में अलग-अलग राज्य क्यों हैं ?

गोलवलकर ने 1940 में चेन्नई में आरएसएस के कार्यकर्ताओं को सम्बोधित करते हुए जो कहा था, अब उसे पढें,

"एक ध्वज के नीचे, एक नेता के मार्गदर्शन में, एक ही विचार से प्रेरित होकर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ हिंदुत्व की प्रखर ज्योति इस विशाल भूमि के कोने कोने में प्रज्वलित कर रहा है।"

(गोलवलकर, 'श्री गुरूजी समग्र दर्शन', खंड-1, पृष्ठ 11)

गोलवलकर के सिद्धांत जनवाद विरोधी और हिटलरी तानाशाही को मानने वाले थे। राष्ट्राद का यह यूरोपीय संस्करण था जो मुसोलिनी और हिटलर की श्रेष्ठतावाद से प्रभावित ही नहीं कहीं कहीं उसकी अनुकृति भी लगता है। यह राष्ट्रवाद भारतीय स्वाधीनता संग्राम के राष्ट्रवाद से बिलकुल उलट है। यही कारण है कि केवल संघ, और हिन्दू महासभा के कुछ लोगो को छोड़कर राष्ट्रवाद की इस नेशन स्टेट वाली अवधारणा को किसी ने भी न तो स्वीकार किया और न ही इस बारे मे सावरकर के साथ खड़े दिखे।

भारत के संविधान में संघीय राज्य की कल्पना की गयी है । भारत एक संघ है। एक राज्य नहीं बल्कि राज्यों का एक समूह है। सभी राज्य अपने आंतरिक राज व्यवस्था और प्रशासन के लिये स्वशासित हैं और अपनी अपनी विधायिकाओं द्वारा जनता के प्रति उत्तरदायी हैं। कुछ अधिकार राज्यों के दायरे में हैं और कुछ अधिकार केंद्र सरकार के दायरे में है। इस संकल्पना के पीछे बहु संस्कृति, भाषा और मान्यताओं के सम्मान और अधिकार की धारणा का सिद्धांत है मगर आरएसएस को विविधता की यह अवधारणा ही नापसंद है।

एमएस गोलवलकर की पुस्तक 'विचार नवनीत' में एक शासक अनुवर्तितता को लागू करने के लिए कहा गया है। अब इसे पढें,

"इस लक्ष्य की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण और प्रभावी कदम यह होगा कि हम अपने देश के विधान से संघीय ढाँचे (फेडरल) की सम्पूर्ण चर्चा को सदैव के लिए समाप्त कर दें, एक राज्य के अर्थात भारत के अंतर्गत अनेक स्वायत्त अथवा अर्ध स्वायत्त राज्यों के अस्तित्व को मिटा दें तथा एक देश, एक राज्य, एक विधान मण्डल, एक कार्य पालिका घोषित करें। उसमें खंडात्मक, क्षेत्रीय, सांप्रदायिक, भाषाई अथवा अन्य प्रकार के गर्व के चिह्न को भी नहीं होना चाहिए। इन भावनाओं को हमारे एकत्व के सामंजस्य को विध्वंस करने का अवकाश नहीं मिलना चाहिए।"

(एम. एस. गोलवलकर, विचार नवनीत, पृष्ठ -227)

अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा, "आज की संघात्मक (फेडरल) राज्य पद्धति पृथकता की भावनाओं का निर्माण तथा पोषण करने वाली, एक राष्ट्र भाव के सत्य को एक प्रकार से अमान्य करने वाली एवं विच्छेद करने वाली है। इसको जड़ से ही हटाकर तदनुसार संविधान शुद्ध कर एकात्मक शासन प्रस्थापित हो।"

(गोलवलकर, 'श्री गुरूजी समग्र दर्शन', खंड-3, पृष्ठ 128)

भाषा, क्षेत्र और संस्कृति की अनेकताओं को समाप्त कर संघ हर क्षेत्र में जिस "शुद्धता" की बात करता है वह एक ऐसी "शुद्धता" है जिसमें देश की बहु संस्कृति को फासीवादी, ब्राह्मणवादी, वर्चस्वकारी तानाशाही शुद्धता में बदलना है। इसके सिवा और क्या कारण हो सकता है कि वह तमाम सांस्कृतिक विविधता को मिटा देना चाहता है? वह चाहता है कि जैसे संघ सोचता है वैसे ही लोग सोचें और बोलें। संघ लोगों के मस्तिष्क से उनके खुद के विवेक को हटाकर उन्हें मानसिक रूप से अपना गुलाम बनाना चाहता है।

किसी भी देश का ध्वज इतिहास और परंपराओं से निर्धारित होता है। भारत का ध्वज भी इसका अपवाद नहीं है। हमारे राष्ट्रीय ध्वज, तिरंगे का भी एक गौरवपूर्ण इतिहास रहा है। कांग्रेस के बेजवाड़ा अधिवेशन (जो अब विजयवाड़ा है) में, आंध्र प्रदेश के एक युवक पिंगली वैंकैया ने एक झंडा बनाया और उसे गांधी जी को दिया। यह ध्वज दो रंगों का बना था। लाल और हरा रंग जो दो प्रमुख समुदायों अर्थात हिन्दू और मुस्लिम का प्रतिनिधित्व करता है। गांधी जी ने सुझाव दिया कि भारत के शेष समुदाय का प्रतिनिधित्व करने के लिए इसमें एक सफेद पट्टी और राष्ट्र की प्रगति का संकेत देने के लिए एक चलता हुआ चरखा होना चाहिये। वर्ष 1931, तिरंगे के इतिहास में एक स्मरणीय वर्ष है। तिरंगे ध्वज को भारत के राष्ट्रीय ध्वज के रूप में अपनाने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया गया और इसे राष्ट्र-ध्वज के रूप में मान्यता मिली।

यह ध्वज जो वर्तमान स्वरूप का पूर्वज है, केसरिया, सफेद और मध्य में गांधी जी के चलते हुए चरखे के साथ था। यह भी स्पष्ट रूप से बताया गया था कि इसका कोई साम्प्रदायिक महत्त्व नहीं था। 22 जुलाई 1947 को संविधान सभा ने वर्तमान ध्वज को भारतीय राष्ट्रीय ध्वज के रूप में अपनाया। स्वतंत्रता मिलने के बाद इसके रंग और उनका महत्व बना रहा। केवल ध्वज में चलते हुए चरखे के स्थान पर सम्राट अशोक के चौबीस तीलियों वाले धर्म चक्र को स्थान दिया गया। इस प्रकार तिरंगा, स्वतंत्र भारत का ध्वज बना।

ध्वज एक प्रतीक के रूप में जनता के बलिदानों, संघर्षों और लक्ष्यों को प्रतिबिम्बित करता है। किसी मुल्क में ध्वज उस मुल्क की जनता का प्रतीक तभी बनता है जब उसके साथ जनता का संघर्ष और उसकी आकांक्षाएं शामिल हो। तिरंगे को साथ लिये लिये सीने पर गोलियां और सिर पर लाठी खाने के अनेक उदाहरण स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में बिखरे पड़े हैं। इस प्रकार संघर्षरत जनता अपने ध्वज को बदलती है और पुराने ध्वज जो शासक वर्गों के प्रतीक में बदल गए होते हैं उन्हें हटाती है। संघर्षरत जनता का अपना ध्वज चुनना एक बात है और प्रतीकों की राजनीति करना और इनके आधार पर लोगों को बाँटना दूसरी बात।

यह सच है कि आजादी के दौरान तिरंगा स्वीकार किया गया। लेकिन ध्वज के मुद्दे पर, आरएसएस अलग ही राग अलापता है। दूसरों से बात-बात पर देश-प्रेम, संविधान प्रेम और तिरंगा प्रेम का प्रमाण मांगने वाले संघ ने खुद क्या कभी तिरंगे झण्डे को अपनाया? जब आजादी की लड़ाई के दौरान 26 जनवरी 1930 को तिरंगा झंडा फहराने का निर्णय लिया गया तब आरएसएस प्रमुख डॉ. हेडगेवार ने एक आदेश पत्र जारी कर तमाम शाखाओं पर भगवा झंडा फहराने का निर्देश दिया।

आरएसएस ने अपने अंग्रेज़ी पत्र ऑर्गनाइज़र में 14 अगस्त 1947 वाले अंक में लिखा,

"वे लोग जो किस्मत के दांव से सत्ता तक पहुंचे हैं वे भले ही हमारे हाथों में तिरंगा थमा दें, लेकिन हिंदुओं द्वारा ना इसे कभी सम्मानित किया जा सकेगा और ना ही अपनाया जा सकेगा। तीन का आंकड़ा अपने आप में अशुभ है और एक ऐसा झंडा जिसमें तीन रंग हो वह बेहद खराब मनोवैज्ञानिक असर डालेगा और देश के लिए नुकसानदेह होगा।"

गोलवलकर ने अपने लेख में आगे कहा है, "कौन कह सकता है कि यह एक शुद्ध तथा स्वस्थ राष्ट्रीय दृष्टिकोण है? यह तो केवल राजनीतिक, कामचलाऊ और तात्कालिक उपाय था। यह किसी राष्ट्रीय दृष्टिकोण अथवा राष्ट्रीय इतिहास तथा परंपरा पर आधारित किसी सत्य से प्रेरित नहीं था। वही ध्वज आज कुछ छोटे से परिवर्तनों के साथ राज्य ध्वज के रूप में अपना लिया गया है। हमारा राष्ट्र एक प्राचीन तथा महान राष्ट्र है जिसका गौरवशाली इतिहास है। तब क्या हमारा कोई अपना ध्वज नहीं था? क्या सहस्त्र वर्षों में हमारा कोई राष्टीय चिन्ह नहीं था? नि:सन्देह, वह था। तब हमारे दिमाग में यह शून्यतापूर्ण रिक्तता क्यों?"

(एम. एस. गोलवलकर, विचार नवनीत, पृष्ठ- 237)

दरअसल आरएसएस महाराष्ट्रीय ब्राह्मण शासक पेशवाओं के भगवा झंडे को भारत का राष्ट्रध्वज बनाना चाहता है। गोलवलकर ने इस बारे में कहा,

''हमारी महान संस्कृति का परिपूर्ण परिचय देने वाला प्रतीक स्वरूप हमारा भगवा ध्वज है जो हमारे लिए परमेश्वर स्वरूप है। इसलिए इसी परम वंदनीय ध्वज को हमने अपने गुरुस्थान में रखना उचित समझा है। यह हमारा दृढ़ विश्वास है कि अंत में इसी ध्वज के समक्ष सारा राष्ट्र नतमस्तक होगा''

(गोलवलकर, 'श्री गुरूजी समग्र दर्शन',भारतीय विचार साधना, नागपुर, खंड-1, पृष्ठ 98)

संघ संविधान से अपनी असहमतियां तार्किक आधार पर नहीं रखता है क्योंकि तर्क से तो संघ का छत्तीस का आँकड़ा है। अतार्किकता के बल पर ही उसने नफरत का धंधा खड़ा किया है। संघ के संविधान विरोध का आधार उसका झूठा प्राचीनता का बहाना है जिसके अनुसार प्राचीन काल में 'स्वर्ण युग' था जबकि ऐतिहासिक सत्यता इस बात को कहीं भी प्रमाणित नहीं करते हैं। जब से संविधान लागू हुआ तब से आरएसएस के प्रमुख नेताओं ने उसका विरोध ही किया है। एक तरफ संघ अतार्किक रूप से संविधान को अप्रश्नेय और पवित्र-पूज्य बनाने की मनोवृत्ति का प्रचार करता है। दूसरी तरफ उसके नेताओं के मन में एक तानाशाही पूर्ण व्यवस्था का सपना है जहां जनवाद, आधुनिक मूल्यों और समानता जैसे विचार हैं ही नहीं।

हर साल 26 नवंबर को संविधान दिवस मनाया जाता है। हम संविधान को, उसने जो अधिकार हमे दिये हैं, उन्हें, एक अच्छे नागरिक के रूप में संविधान जो हम नागरिकों से अपेक्षा करता है उस उम्मीद को हर साल याद करते हैं। संविधान भले ही 26 नवंबर 1949 को स्वीकार किया गया हो, पर वह लागू 26 जनवरी 1950 से हुआ। संसार मे कुछ भी पूर्ण नही है और न ही कोई विकल्पहीन है। संविधान भी अपवाद नहीं है। वह भी अंतिम नहीं है। समय के अनुसार उसमे भी संशोधन हुये हैं और आगे भी होते रहेंगे। संविधान में सत्तर सालों में सौ से अधिक संशोधन किये गए हैं। पहले संविधान, संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार मानता था, अब यह अधिकार नहीं रहा।

समय और सरकार की विचारधारा के साथ साथ संविधान बदलता रहता है। पर संविधान का मूल ढांचा यानी, संसदीय प्रणाली, लोकतंत्र, पंथनिरपेक्षता, मौलिक अधिकार, संघीय स्वरूप आदि में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है और यह अधिकार संसद जिसकी सर्वोच्चता निर्विवाद है, के पास भी नहीं है।